॥ सद्विचार मुक्तावली ॥

मेरी भावना ।

जिसने राग द्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया ।
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया ॥
बुद्धि, वीर जिन, हरि हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो ।
भक्ति-भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो ॥
विषयों की आशा नहिं जिनके साम्य-भाव धन रखते हैं ।
निज पर के हित साधन में जो निशिदिन तत्पर रहते हैं ॥
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या बिना खेद जो करते हैं ।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं ॥
रहे सदा सत्संग उन्हीं का ध्यान उन्हीं का नित्य रहे ।
उन्हीं जैसी चर्चा में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे ॥
नहीं सताऊं किसी जीव को झूठ कभी नहिं कहा करूं ।
परधन बनिता पर न लुभाऊं, संतोषामृत पिया करूं ॥

अहंकार का भाव न रक्खूं नहीं किसी पर क्रोध करूं।
देख दूसरों की बढ़ती को कभी न ईर्षा भाव धरूं॥
रहे भावना ऐसी मेरी सरल सत्य व्यवहार करूं।
बने जहांतक इस जीवन में औरों का उपकार करूं॥
मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन दुखी जीवों पर मेरे उर से करुणा श्रोत बहे॥
दुर्जन-क्रूर-कुमार्गरतों पर क्षोभ न मेरे को आवे।
साम्य भाव रक्खूं मैं उन पर ऐसी परिणति होजावे॥
गुणी जनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहांतक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे॥
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे॥
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊं या मृत्यु आज ही आजावे॥
अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा कभी न पद डिगने पावे॥
होकर सुखमें मग्न न फूले, दुख में न कभी घबरावे।
पर्वत नदी श्मशान भयानक अटवी से नहीं भय खावे॥
रहे अडोल-अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्ट वियोग-अनिष्ट योग में, सहन शीलता दिखलावे॥
सुखी रहें सब जीव जगत के कोई कभी न घबरावे।

वैर पाप-अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे ॥
घर घर चर्चा रहे धर्म की दुष्कृत दुष्कर होजावे।
ज्ञान चरित उन्नति कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावें॥
ईति-भीति-व्यापे नहिं जगमें वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्म्म निष्ट होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे ॥
रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा-धर्म जगतमें, फैल सर्व हित किया करे ॥
फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर पर रहा करे।
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं, कोई मुखसे कहा करे ॥
बनकर सब "युग-वीर" हृदय से देशोन्नति रत रहा करे।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा करें॥

(जुगलकिशोर)

मेरी प्रार्थना।

(१)

पारब्रह्म परमेश्वर स्वामी, सब सुख के भंडार।
ऐसी कृपा कीजिये मुझपर, मिटै सभी अविचार ॥
करूं न कोई कार्य विमुख श्रुति, वेग बढ़ाऊं ज्ञान।
इसीलिये मैं करता हूं नित, खूब तुम्हारा ध्यान ॥१॥

(२)

जिस प्रकार कवि, कोविद, ज्ञानी, त्याग असूया भाव।
सबके हित संवर्द्धित करते, अपना प्रेम प्रभाव ॥

उस प्रकार का मैं भी बनकर, करूं सुयश विस्तार।
कभी न निन्दनीय कहलाऊं, सुख-प्रद-बोध विसार॥

(३)

मान-महत्ता के अंकुर की, मन में बढ़े न बेल।
मेरा धर्म-प्राण-पुरुषों से, रहे निरन्तर मेल॥
उस मतको स्वीकारी समझूं, नेक नहीं सुख मूल।
जिसमें भरी हुई अभगत हो, भ्रांति भांति की भूल॥

(४)

मन मानी करने से अबतक, मन की मिटी न भ्रान्ति।
मीमांसा कर सत्य-धर्म की, अब तो पाऊं शान्ति॥
जिन पुरुषों की चरित प्रशंसा, की जाती दिन रात।
कर उनका अनुसरण सोत्सुक, पाऊं निरी निजात॥

(५)

मेरा कर्म-काण्ड से अबतक, बढ़ा नहीं अनुराग।
"नास्तिकता की वृद्धि हुई है," दूं मैं इसका त्याग॥
जितने भी कर्त्तव्य-कर्म हैं, उन सब में अनुरक्ति।
बढ़ती ही जावे, तब मेरी-सिद्ध होय सद्भक्ति॥

(६)

धन बल, प्रभुता पाय कुजन-जन, करते हैं अभिमान।
"कितने दिवस शेष जीवन है" इसका उन्हें न ज्ञान॥
मैं उनकी संगति से बचना, आवश्यक-स्वीकार।
चाह रहा हूं भवसागर से, हो कर बेड़ा पार॥

(कर्णकवि)

प्रभू प्रार्थना।

(१)

प्रभू पतित पावन दीनबन्धो भक्ति वत्सल हे प्रभो।
मंगल करन अशरणशरण आनन्द दायक हे विभो॥
मम बुद्धि निर्मल कीजिये भव भय हरण परमात्मा।
संतान भारतवर्ष की होवें सदा धर्मात्मा॥

(२)

हम दीन दुर्बल बालिकों की नाथ रक्षा कीजिये।
कर नाश पंक मलीनता शुभ नीति शिक्षा दीजिये॥
उरमें महान विचार हों प्रभू प्रेम का संचार हो।
रिपु फूटका संहार हो सिद्धान्त युक्त सुधार हो॥

(३)

होकर हताश कभी न बैठें, नित्य उद्योगी रहें।
सब छात्र विद्या ग्रह में दिन रात सहयोगी रहें॥
अति धीरता के साथ अपने कार्य्य में तत्पर रहें।
आलस्य तज उत्साह मय हो प्रेमसे मिलकर रहें॥

(४)

निज धर्मका पालन करें प्रभू मोक्ष पथकी प्राप्ति हो।
दुख द्वन्द अरु अघवृन्दकी सबकी, एक साथ समाप्ति हो॥
अज्ञानता अनुदारता अभिमानता सब दूर हो।
सत्पात्रता चातुर्य्य और सुशीलता भरपूर हो॥

विद्याविनय सम्पन्न हो पितु मात भक्ति अनन्य हों ।
मनकर्म वाणी से सदा, प्रभु ईश शरणापन्न हों ॥
कर्तव्य शाली हों स्वदेशी हित सदा सोचा करें ।
संसार बंधन तोड़कर सब स्वच्छन्द हो न कभी डरें ॥

प्रार्थी

हजारीलाल जैन "प्रेमी"

प्रभु विनय ।

प्रभु रक्षा करो हमारी हम हैं सब शरण तुम्हारी ।
अतिगाढ़ मोह तम नाशौ, उर विद्या सूर्य प्रकाशौ ॥
सुख दायक मार्ग दिखाओ, दुष्कृति से हमें बचाओ ।
धन, धैर्य प्रतिष्ठा दीजै, शुभगति अधिकारी कीजै ॥
हमसे सब जन सुख पावें, कोई दुःख न हमें दिखावें ।
हैं जितने मित्र हमारे, हों भक्त अनन्य तुम्हारे ॥
यह द्विज प्रताप नारायण, होवै तव प्रेम परायण ।

(प्रताप नारायण मिश्र)

ऐसी मति होजाय.

सोहनी।

दया मय ऐसी मति हो जाय।
निज मत की कल्याण-कामना,
दिन दिन बढ़ती जाय ॥ १ ॥
औरों के सुख को सुख समझूँ,
सुख का करूं उपाय।
अपने दुख सब सहूं किन्तु,
पर दुख नहीं देखा जाय ॥ २ ॥
अधम अज्ञ अस्पृश्य अधर्मी,
दुखी और असहाय।
सबके अवगाहन हित मम उर,
सुर सरि सम बन जाय ॥ ३ ॥
भूला भटका उलटी मतिका,
जो है जन समुदाय।
उसे सुझाऊं सच्चा सत्पथ,
निज सर्वस्व लगाय ॥ ४ ॥
सत्य धर्म हो, सत्य कर्म हो,
सत्य ध्येय बन जाय।
सत्यान्वेषण में ही "प्रेमी"
जीवन यह लग जाय ॥ ५ ॥

अभ्यर्थना ।

बनें हम ऐसे हे भगवान ॥ टेक ॥

हों अकलंक समान मनीषी, और निकलंक समान ।
प्राणोत्सर्गी बने प्रभो हम, रखें जाति अभिमान ॥ बनें हम० ॥
मान तुंग से-मंत्र भद्र सम, होवें सब गुणवान ।
हो जावें सुकुमाल हज़ारों, यहां पै भक्ति निधान ॥ बनें हम० ॥
अर्जुन कैसे हों बलधारी, और कृष्ण कीसी हो शान ।
अभिमन्यु सम बालक जन्में, करें देश उत्थान ॥ बनें हम० ॥
आवें पथ में संकट उनको, सहलें फूल समान ।
सत्य मार्ग को कभी न त्यागें चाहे जावें प्राण ॥ बनें हम० ॥
भेद भाव न रखें किसी से, सब भारत सन्तान ।
प्रेम पाठको पढ़ें अहर्निश करें देश गुण गान ॥ बनें हम० ॥
दीन जनों का दुख देखकर, उपजे दया महान ।
राष्ट्र मंत्र का जाप जपें नित हो सबका कल्याण ॥ बनें हम० ॥

(हज़ारीलाल "प्रेमी")

ईश्वर वंदना ।

हे प्रभो ! आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिये ।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिये ॥
लीजिये हमको शरण में हम सदाचारी बनें ।
ब्रह्मचारी, धर्मरक्षक, वीर-व्रतधारी बनें ॥

(कविता विनोद)

धर्मवीर।

वह क्रिया से है भली जी की सफ़ाई जानता।
पंडिताई से भलाई को बड़ी है मानता॥
वह सचाई को पखंडों में नहीं है सानता।
वह धरम के रास्ते को ठीक है पहचानता॥
ज्ञान से जग-बीच रहकर हाथ वह धोता नहीं।
आड़ में परलोक की वह लोक को खोता नहीं॥ १॥

तंग करना, जीदुखाना, छेड़ना भाता नहीं॥
वह बनाता है कभी सुलझे को उलझाता नहीं॥
देखकर दुख दूसरों का चैन वह पाता नहीं।
एक छोटे कीट से भी तोड़ता नाता नहीं॥
लोक-सेवासे सफल होकर सदा बढ़ता है वह।
धूल बनकर पांवकी जन-सीस पर चढ़ता है वह॥

धन, विभव, पद मान, उसको और देते हैं झुका।
प्रेम बदले के लिये उसका नहीं रहता रुका॥
वह अजब जल है उसे जाता है जो जग में फुंका।
वैरियों से वह कभी बदला नहीं सकता चुका॥
प्यार से है बाघ से विकराल को लेता मना।
वह भयंकर ठौर को देता तपोवन है बना॥ २॥

वह समझता है-सभी रज बीज से ही है जना।
मांस का ही है कलेजा दूसरों का भी बना।

आन जाने डर न किसकी आंख से आंसू छना।
दूसरे भी चाहते हैं मान का मुट्ठी चना॥
खोलना जिसका किसी से भी नहीं जाता सहा।
है रगों में दूसरों की भी वही लोहू बहा॥ ३॥

वह तनक रोना, कलपना और का सहता नहीं।
हाथ धोकर और के पीछे पड़ा रहता नहीं॥
बात लगती वह किसी को एक भी कहता नहीं।
चोट पहुंचाना किसी को वह कभी चहता नहीं॥
जानता है दीन दुखियों के दर्द को भी वही।
बेकसों की आह उससे है नहीं जाती सही॥ ४॥

वह चुहलें चाह की उसको नहीं सकतीं सता।
प्यार वह निज वासनाओं से नहीं सकता जता॥
मोह की जी में नहीं उसके उलहती है लता।
है कलेजे में न कीने का कहीं मिलता पता॥
रोस की, जी में कभी उठती नहीं उसके लपट।
छल नहीं करता किसी से, वह नहीं करता कपट॥ ५॥

देखकर गिरते उठाता है, बिगड़ जाता नहीं।
वह छुड़ाता है फँसे को, और उलझाता नहीं॥
राह भूले को दिखा देता है भरमाता नहीं।
बिगड़ते को है बनाता, आँख दिखलाता नहीं॥
सर अँधेरे में भला किसका न टकराया किया।
वह अँधेरा दूर करता है, जलाता है दिया॥ ६॥

जीव जितने हैं जगत में, हैं उसे प्यारे बड़े।
दुख उसे होता है जो तिनका कहीं उनको गड़े॥
एक चींटी भी कहीं जो पांव के नीचे पड़े।
तो अचानक देह के होते हैं सबरोयें खड़े॥
हैं छुटे उसकी दया से ये हरे पत्ते नहीं।
तोड़ते इनको उसे है पीर सी होती कहीं॥७॥
कंप उठे सबलोक पत्ते की तरह धरती हिले।
राज, धन, जाता रहे पद, मान मिट्टी में मिले॥
जीभ काटी जाय, फोड़ी जायं आंखें मुंह सिले।
सैकड़ों टुकड़े बदन हो पर्त चमड़े की छिले॥
छोड़ सकता उस समय भी वह नहीं अपना धरम।
जब रहें हरएक रोयें नोचते चिमटे गरम॥८॥
धर्म वीरों की चले सब लोग हो जावें भले।
भाइयों से भाइयों का जी न भूले भी जले॥
चन्द्रमा निकले, धरम का, पापका बादल टले।
हे प्रभो संसार का हर एक घर फूले फले॥
इस धरा पर प्यार की प्यारी सुधा सब दिन बहे।
शान्ति की सब ओर सुन्दर चांदनी छिटकी रहे॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय।

कर्मवीर ।

देखकर जो विघ्न बाधाओं को घबराते नहीं ।
भाग पर रह करके जो पीछे हैं पछताते नहीं ॥
काम कितना ही कठिन हो पर जो उकताते नहीं ।
भीड़ पड़ने पर भी जो चंचलता दिखलाते नहीं ॥
होते हैं यक आन में उनके बुरे दिन भी भले ।
सब जगह सब काल में रहते हैं वे फूले फले ॥ १ ॥

आज जो करना है करदेते हैं उसको आज ही ।
सोचते कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वही ॥
मानते जी की हैं सुनते हैं सदा सब की कही ।
जो मदद करते हैं अपनी इस जगत में आप ही ॥
भूलकर वे दूसरे का मुँह कभी तकते नहीं ।
कौन ऐसा काम है वे कर जिसे सकते नहीं ॥ २ ॥

जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं नहीं ।
काम करने की जगह बातें बनाते हैं नहीं ॥
आज कल करते हुए जो दिन गंवाते हैं नहीं ।
यत्न करने में कभी जो जी चुराते हैं नहीं ॥
बात है वह कौन जो होती नहीं उनके किये ।
वे नमूना आप बन जाते हैं औरों के लिये ॥ ३ ॥

गगन को छूते हुये दुर्गम पहाड़ों के शिखर ।
वे घने जंगल जहां रहता है तम आठों पहर ॥
गर्जते जल-राशि की उठती हुई ऊंची लहर ।

आग की भय दायिनी फैली दिशाओं में लवर ॥
ये कंपा सकतीं कभी जिसके कलेजे को नहीं ।
भूलकर भी वह नहीं नाकाम रहता है कहीं ॥ ४ ॥
चिलचिलाती धूप को जो चांदनी देवें बना ।
काम पड़ने पर करें जो शेर का भी सामना ॥
हंसते हंसते जो चबा लेते हैं लोहे के चना ।
"है कठिन कुछ भी नहीं" जिनके है जी में यह ठना ॥
कोस कितने ही चलें पर वे कभी थकते नहीं ।
कौनसी है गांठ जिसको खोल वे सकते नहीं ॥ ५ ॥
ठीकरी को वे बना देते हैं सोने की डली ।
रेग को करके दिखा देते हैं वे सुन्दर खली ॥
वे बबूलों में लगा देते हैं चंपे की कली ।
काकको भी वे सिखा देते हैं कोकिल-काकली ॥
ऊसरों में हैं खिला देते अनूठे वे कमल ।
वे लगाते हैं उकटे काठ में भी फूल फल ॥ ६ ॥
कामको आरंभ करके यों नहीं जो छोड़ते ।
सामना करके नहीं जो भूलकर मुंह मोड़ते ॥
जो गगन के फूल बातों से वृथा नहीं तोड़ते ।
संपदा मनसे करोड़ों की नहीं जो जोड़ते ॥
बन गया हीरा उन्हीं के हाथ से है कारबन ।
कांच को करके दिखा देते हैं वे उज्वल रतन ॥ ७ ॥
पर्वतों को काटकर सड़कें बना देते हैं वे ।

सैकड़ों मरुभूमि में नदियां बहा देते हैं वे ॥
अगम-जल-निधिगर्भ में बेड़ा चला देते हैं वे ।
जंगलों में भी महा मंगल रचा देते हैं वे ॥
भेद नभतलका उन्हों ने है बहुत बतला दिया ।
है उन्होंने ही निकाली तार की सारी क्रिया ॥ ८ ॥
कार्य्य-थलको वे कभी नहिं पूछते "वह है कहां" ।
कर दिखाते हैं असंभव को वही संभव यहां ॥
उलझनें आकर उन्हें पड़ती हैं जितनी ही जहां ।
वे दिखाते हैं नया उत्साह उतनाही वहां ॥
डालदेते हैं विरोधी सैकड़ों ही अड़चलें ।
वे जगह से काम अपना ठीक करके ही टलें ॥ ९ ॥
जो रुकावट डालकर होवे कोई पर्वत खड़ा ।
तो उसे देते हैं अपनी युक्तियों से वे उड़ा ॥
बीचमें पड़कर जलधि जो काम देवे गड़बड़ा ।
तो बना देंगे उसे वे क्षुद्र पानी का घड़ा ॥
बन खँगालेंगे करेंगे व्योम में बाज़ी गरी ।
कुछ अजब धुन काम के करने की उनमें है भरी ॥१०॥
सब तरह से आज जितने देश हैं फूले फले ।
बुद्धि, विद्या, धन, विभव के हैं जहां डेरे डले ॥
वे बनाने से उन्हीं के बनगये इतने भले ।
वे सभी हैं हाथ से ऐसे सपूतों के पले ॥

लोग जब ऐसे समय पाकर जनम लेंगे कभी ।
देशकी औजाति की होगी भलाई भी तभी ॥ ११ ॥

(अयोध्यासिंह उपाध्याय)

कर्म वीर ।

कर्म वीर क्या कभी हृदय में कोई भी भय खाता है ।
जो पथ पकड़ा प्रण कर उस पर सन्तत बढ़ता जाता है ॥
हो सावन तममयि रजनी छाये हुये नभ में हों घन घोर ।
झंझावात प्रवाहित हो करते हों और वन्य पशु शोर ॥
जब कि निविड तम अखिल विश्व-तल कोही सरके जाताहै ।
कर्म्म वीर क्या कभी हृदय में तब भी कुछ भय खाता है ॥
पथ में कंटक फैल रहे हों तरु समूहहो अड़ा हुआ ।
इतस्ततः हो घोर सघन बन का कुजालसा पड़ा हुआ ॥
नद नाले हों शोर मचाते करके रव भीषण चित्कार ।
काल यामिनी कृष्ण करों को नचा करे यदि भय सञ्चार ॥
तब भी पग क्या पीछे हटता मन क्या शंका लाता है ।
कर्म्म वीर क्या कभी हृदय में कोई भी भय खाता है ॥
विघ्नवृन्द काठिन्य कालसा खोलें मुख पर वाह नहीं ।
कार्य्य करेंगे सिद्धि मिलेगी अभी मिले सो च.हे नहीं ॥
ममता-धारा का जगतीतल में करदेंगे पुनः प्रवाह ।

उसके लिये अमित दुख होवे सभी सहेंगे कहें न हाय ॥
'कभी सफलता यदि न मिली' क्या कुछ यह भाव उरआता है।
कर्मवीर क्या कभी हृदय में कोई भी भय खाता है ॥

कर्मवीर

हाथ धरकर गाल पर चुप साध कर जो बैठते ।
आज कल के फेर में पड़कर न कुछ हैं देखते ॥
आदर निरादर का न जिनको तनक सा भी ध्यान है ।
है उन्हें निःसार जग मिलता सदा अपमान है ॥

२

सनसनी जिनके हृदय में है नहीं उत्साह की ।
कार्य करने की जिन्हों ने है नहीं परवाह की ॥
कौन थे क्या बन गये जिनको नहीं कुछ ध्यान है ।
उनके लिये जग दुःख मय जीवन मरण समान है ॥

३

आलसी जनको न दिखती झलक आशा की कहीं ।
कार्य सब दुःसाध्य हैं जग में उन्हीं को सब कहीं ॥
उठता नहीं है तुच्छ तृण तक और की क्या बात है ।
चलता कठिनता से स्वयम् निज शक्तिशाली गात है ॥

४

जिसको न अपनी शक्तिका दिल में तनिक भी मान है ।
किस लिये नर देह पाई यह नहीं कुछ भान है ॥

वह सब समय सर्वत्रही सहता सतत पीड़ा महा ।
आलसी जनको भला है कार्य की फुरसत कहाँ ॥

५

जो अड़ा बस वह खड़ा सिद्धांत ये सच मानिये ।
काज करते का नहोता पतन ध्रुव यह जानिये ॥
जन निठल्लों के लिये जग क्लेश कारागार है ।
बस असम्भव शब्द उनको एकही आधार है ॥

६

भूख से मरता वही निःसार जो जग जानता ।
जानकर जो कार्य को उनद्रुत नहीं सन्मानता ॥
कौन ऐसा कार्य जग में जो हमें दुःसाध्य है ।
है असम्भव कुछ नहीं नर वीर से सब साध्य है ॥

(हितोपकारिणी)

वीरता ।

कर करवाल लिये रण भू में निधरक जाना ।
बिंधि कर विशिखादिक से पीछे पग न हटाना ॥
लख कर रुधिर प्रवाह और उत्तेजित होना ।
रोम रोम छिद गये न दृढ़ता चित्त की खोना ॥
किन्तु वीरता उच्च कोटि की और कई हैं ।
कथित वीरताओं में जो वर कही गई हैं ॥
करना स्वारथ त्याग क्रोध से विजित न होना ।
विपत्ति-काल औ कठिन समय में धैर्य न खोना ॥

ऐसी ही कितनी और हैं द्वितिय भांति की वीरता ।
जिन में न चाहिये विपुल बल और न वज्र शरीरता ॥
रामानुज में द्विविध वीरता है- दिखलाती ।
समय समय पर जो चित्त को है बहुत लुभाती ॥
पति वन जाता देख सिया थी जब अकुलाई ।
सुत वियोग वश जब कौशिल्या थी बिलखाई ॥
उस काल सुमित्रा सुवन ने जो दिखलाया आत्म बल ।
यह उन के कीर्ति-निकेत का कलि खंभ है अति अचल ॥

कर्म ।

मुख्य सुखदा सबल सच्चा सरस सद्धर्म करते हैं ।
छोड़ कोरी कथाओं को सदा जो कर्म्म करते हैं ॥
रोकती कब भला उनको सुमग से विघ्न बाधायें ।
सहन करि वीर वर उनको फूलते और फलते हैं ॥
भाग के फेर में पड़कर, नहीं दुख भोग भुगते हैं ।
जहां दीवाल पाते हैं वहां बल से उछलते हैं ॥
प्रशंसित लक्ष पर भाई सफलता क्यों न होवेगी ।
प्रकाशित पूर्वज प्यारे यही उपदेश करते हैं ॥

"नयन"

वीर प्रतिज्ञा ।

सत्पथ पर रह अचल, अचलको दृढ़ स्थिरता सिखलावेंगे ।
कोटि विघ्न आवें क्या उनसे, कभी कहो भय खावेंगे !
पथमें हो तम जाल बिछाये, तनिक नहीं इसकी परवाह ।
प्राण कंठ में आवें तोभी करूं न मैं जीवन की चाह ॥
हृदय लाख कष्टों में पिसकर कभी कहेगा दबी न आह ।
यही अटक सिद्धांत रहेगा, भू में हो नित सत्य प्रवाह ॥
सत्पथ तज न कुपथ पर सच्चे वीर स्वपाद बढ़ावेंगे ।
कोटि विघ्न आवें क्या उनसे कभी कहो भय खावेंगे !
कोटि सुकोमल पुष्प सुसज्जित दुग्ध फेन इव सुख प्रद सेज ।
हमें मिले पर हम न सोयेंगे खोवे वह यदि सच्चा तेज ॥
धन सम्पत्ति ऐश्वर्य आदि की हमें तनिकभी चाह नहीं ।
वहां नहीं जी लगा जहां पर प्रेम पियूष प्रवाह नहीं ॥
ऐक्य सुमन की ललित वाटिका में कृति सुरभि उड़ायेंगे ।
कोटि विघ्नभी सत्पथ पर बढ़ने से रोक न पायेंगे ॥
कपट, क्रूरता, काम क्रोधकी दाल नहीं गल पावेगी ।
स्नेह शक्ति पर भक्ति हमारी उनको दूर भगावेगी ॥
श्रद्धा से स्वाधीन वेदिपर बलि का पाठ पढ़ायेंगी ।
उस पर तनिक न हिचक नेह से वह सर्वस्व चढ़ायेंगी ॥
लिये प्रेम उपहार एक कोने में हम भी जावेंगे ।
कोटि विघ्नसे भी न रुकेंगे तनिक नहीं भय खावेंगे ॥
कर विश्वासघात कोईभी जन ले चाहे सर्वस छीन ।

नहीं फिरेंगे कर फैलाते होकर भी धन जन से हीन ॥
रत्न हमारे छिन जावें हम ठोकर नितप्रति खांय अनेक।
होजावें हम चाहे निराश्रित आश्रय दाता मिले न एक ॥
तब भी हत उत्साह न होंगे, कर्म किये नित जावेंगे।
कोटि विघ्न आवें आने दो, इन से खेल मचावेंगे ॥
हम स्वदेश को प्यार करेंगे, आपा भाव भेष को प्यार।
निजाशेष को प्यार करेंगे अपने स्वत्व-शेष को प्यार ॥
मातृ भूमि का जन्म-दात्रिका, पुनः करेंगे हम उद्धार।
द्वेष कटार जहां चलती है होगा वहां स्नेह सञ्चार ॥
यही नित्य उद्देश्य रहेगा जागृति-ज्योति जगावेंगे।
कोटि विघ्न वृन्दों से कभी हम तनिक नहीं भय खावेंगे ॥
मातृ भूमि-गुण गान सदा हो और सदैव सुकर्म-महान।
उदित प्रभा मय-ज्ञान सदा हो और सदैव पूरा अभिमान ॥
सत्यान्तर्गत सौख्य शान्ति की सुखमय धार बहावेंगे।
कोटि विघ्न आजायें नहीं भय खावेंगे भय खावेंगे ॥

(कन्हैया लाल जैन कस्तला)

वीर पुत्रों की प्रतिज्ञा।

हम वीर की संतान हैं, हटकर न हरगिज़ जायंगे।
कर संकटों का सामना, निज आत्म-बल प्रकटायगे ॥
तूफान हो घमसान हो और मेह मूसलधार हो।
बिजली कड़कती हो भले, हम धैर्य ना छिटकायगे ॥

हो गड़गड़ाहट गेज की, खंजर चमकते हों भले।
हम ढाल सीनों को बना, कर्तव्य करते जायंगे॥
सब आसमां को छानलें, भूखंड छोड़ेंगे नहीं।
हम साध्य साधन के लिये, पाताल में घुस जायंगे॥
आदेव दानव देखलें, इन्सान की क्या बात है।
खुद बाजुओं के जोर से नीचा उन्हें दिखलायंगे॥
संसार आगे बढ़ चला संभव नहीं हम ना बढ़ें।
पीछे सभी को छोड़ कर हम शीघ्र आगे जायंगे॥
बस सहचुके हम आपदायें, और सह सकते नहीं।
आपत्तियों के मार्ग को ही, सर्वथा तज जायंगे॥
निज घर हमारा मुक्ति है, आनन्द पावेंगे वहीं।
वसुकर्म दल को नाश कर, सच्चा "स्वराज्य" जमायंगे॥
निज धर्म की मोटो, अहिंसा, धर्म का झंडा उठा।
हम विजय दुंदुभि से उसे, संसार में फहरायंगे॥

स्वदेश प्रीति—

होगा नहीं कहीं भी ऐसा अति दुरात्मा वह प्राणी।
अपनी प्यारी मातृ भूमि है जिससे नहीं गई जानी॥
"मेरी जननी यही भूमि है" इस विचार से जिसका मन।
नहीं उमंगित हुआ वृथा है उसका पृथ्वीपर जीवन॥१॥
क्या कोई ऐसा है? जिसका मन न हार्ष से भरजाता।
देश विदेश घूमकर जिस दिन वह अपने घरको आता॥

यदि कोई है ऐसा, तो तुम जांचो उसको भले प्रकार।
नाम न लेता होगा कोई करता होगा नहीं सत्कार ॥२॥
पावे वह उपाधि यदि उत्तम अथवा लक्ष्मी का भंडार।
लम्बा चौड़ा नाम कमाकर चाहे होजावे मतवार॥
उसकी सब पद्वियां व्यर्थ हैं उसके धन को है धिक्कार।
केवल अपने तनकी सेवा करता है जो विविध प्रकार ॥३॥
विमलकीर्ति का जीवनभर वह कभी न होगा अधिकारी।
घोर मृत्यु के पञ्जे में फंस पावेगा वह दुखभारी॥
तुच्छ धूल से उपजा था वह उसमें ही मिलजावेगा।
उस पापी के लिये न कोई आँसू एक बहावेगा॥ ४॥

गौरीदत्त वाजपेयी

देश भक्ति।

करो उस भारत का गुण गान

सजला सफला वसुधा, सुखदा दिव्य धरा रस खान।
निर्मल धन गरिमा गौरव का जो उत्कर्ष महान्॥
भूतल भूषण पुण्य प्रभामय सुखमा शान्ति समान।
खेल गये जिस की गोदी में, राम कृष्ण हनुमान॥
जिस के पुत्र बुद्धि विद्या निध, महावीर भगवान।
बाजी भूमंडल में जिन की, शुभ सिद्धान्ती तान॥
जिस की एक धैर्यता सीखे भीष्म हुये निर्वान।
उस गुण मय कारण भारत का करो सत्य सन्मान॥

(सत्य)

मातृभक्ति।

हे जन्म भूमि जननी, मैं तुझ को आदरूंगा।
निज बाहु बल से तेरे संकट सभी हरूंगा॥
निज बुद्धि वाक्य बल से साहित्य घर भरूंगा।
सम्पत्ति सारी अपनी चरणों पै ले धरूंगा॥
तन मन वचन से मन से सेवा तेरी करूंगा।
तेरे लिये जिऊंगा तेरे लिये मरूंगा॥
दुर्लभ शरीर नर का तूने मुझे दिया है।
फल फूल अन्न देकर परि पुष्ट भी किया है॥
घी दूध नीर तेरा भर पेट नित्य पिया है।
इस हेत मैंने दिल में दृढ़ नेम यह किया है॥
जननी सुप्रेम तेरा मनमें मेरे भरा है।
निज देश भाइयों का शुभ नेम भी खरा है॥
चातक के चित्त में जब तक स्वाती का आसरा है।
तब तक के हेत मैंने मनमें यही धरा है॥
आवेगी यदि विपद् कुछ हंसकर उसे सहूंगा।
सेवा में तेरी माता तत्पर सदा रहूंगा॥
सम्मान धन सुपदवी कुछ भी न मैं चहूंगा।
कहता हूं कह चुका हूं आगे यही कहूंगा॥
सुनली है तेरी महिमा ग्रन्थों में जो बखानी।
पर देखता नहीं हूं सम्पत्ति वह पुरानी॥
लखि दीन हीन तुझको पचता नहीं है पानी।
इस हेत पैज मैंने है अपने मन में ठानी॥

तन मन वचन से धन से सेवा तेरी करूंगा ।
तेरे लिये जिऊंगा तेरे लिये मरूंगा ॥
(लाला भगवानदीन काशी)

प्रेमामृत

है जीवन का आधार यही, है सर्व सुखों का सार यही
आनंद-पोत-पतवार यही, रस-बाग-भ्रमर गुंजार यही
दिन रात इसी का ध्यान धरो-प्यारे प्रेमामृत पान करो ॥१॥
प्रेम - परम-पद दायक है, संतत सब ठौर सहायक है
जो सदा-प्रेम-गुण गायक है, उस पर प्रसन्न रघुनायक है
हो मस्त मजे से गान करो-प्यारे प्रेमामृत पान करो ॥ २ ॥
जब प्रेम घटा घिर जाती है, आनन्द वारि बरसाती है
सुख की बिजली चमकाती है, हिय-भूमि हरी हो जाती है
प्रेमी हूं-यों अभिमान करो-प्यारे प्रेमामृत पान करो ॥३॥
क्यों वैमनस्य-विष पीते हो, आलस में पड़कर जीते हो
देते सब छोड़ सुभीते हो, अब होते जाते रीते हो
दिल खोल मिलो मत मान करो-प्यारे प्रेमामृत पान करो ॥४॥
जो प्रेम मधुर फल चखते हैं, प्रेमार्द्र चित्त को रखते हैं
अपना सा सभी निरखते हैं, फिर प्रेम दृष्टि से लखते हैं
सर्वस्व उन्हीं को दान करो-प्यारे प्रेमामृत पान करो ॥५॥
भ्रातृत्व भाव का ध्यान करो-भारत का पुनरुत्थान करो
शिर फोड़ फूट का त्राण करो-सब मिलकर एक जबान करो
फिर सुरपुर हिन्दुस्तान करो, प्यारे प्रेमामृत पान करो ॥६॥
(गोपीचन्द लाल गुप्त)

प्रेम ।

प्रेम, वही नर सुखी तुझे जिसने अपनाया ।
रहे वही अति दुखी द्वेष जिसके मन भाया ॥
प्रेमी के सब कोग स्वयं बनजांय हितैषी ।
द्वेषी नरका कौन नहीं होता अशुभैषी ॥
अहो प्रेम से प्रेम हमारा ज़रा नहीं है ।
और द्वेष से द्वेष हमारा तनिक नहीं है ॥
इस ही कारण आज हाय हम गिरे हुये हैं ।
पंडित बाबू सभी द्वेष से घिरे हुये हैं ॥
द्वेषानल ही भस्म करे द्वेषी के तन को ।
सदा कुचिंताविष्ट रखा करती है मनको ॥
क्यों जलते हम देख विभव औरोंका भाई ।
ईर्षा करके किसने किसकी संपति पाई ॥
कौवा यदि खाने की वस्तु कहीं पाता है ।
निज कुटुम्बको प्रीति भावसे बुलवाता है ॥
सहोदरों में बैर-भाव पर हाय यहीं है ।
कौवो से भी नीच कहो हम हुए नहीं हैं ॥
जो नर हो अति विकल अहो संताप धूपसे ।
शान्ति न होगी स्नानकरे वह अगर कूपसे ॥
त्यों सुख देता नहीं लगावे यदि चन्दन को ।
प्रायःप्रिय वच देताहै जो सुख तन मनको ॥
अति दुःखित से भी यदि मिष्ट बचन बोलें हम ।

प्रेम गिरासे झट उसका दुख होजावे कम ॥
होताहै क्या कष्ट मिष्ट यदि बोलें बोली ।
कौड़ी पैसा बिना दिये भरलें यश झोली ॥
खड्गादिक शस्त्रों से जो व्रण होजाता है ।
मरहमादि उपचार किये वह मिट जाताहै ॥
कभी न मिटता घाव कटुक का प्यारो ।
रखो सभीसे प्रेम अतःकटु वच, न उचारो ॥
जितने उन्नति हुए, हुए सब हृदय प्रेमसे ।
अति क्रोधित बैरी भी होवे नम्र प्रेम से ॥
प्रेम मंत्र है वशीकरण अमृतमय बोली ।
इस कारण तुम करा प्रेममय सारी टोली ॥

(कुशमाकर)

प्रेम ।

कहता है यह कौन प्रेममें दुख ही दुखहै ।
कंटकमय वह राह वहांपर जरा न सुखहै ॥
विषहै कहकर कौन जगतको भड़काताहै ।
विषमय इस को कौन हा दिखलाता है ॥
क्या प्रेमी अब नहीं रहा कोई दुनियां में ।
या न प्रेमकी रही प्रतिष्ठा अब दुनियां में ॥
हा क्यों होती आज प्रेम की ऐसी निंदा ।
विषयी निन्दक अरे न होता क्यों शर्मिंदा ॥
जो कहता है कभी न प्रेमी सुख पाता है ।
उस विषयी को प्रेम नहीं करना आता है ॥

है जो दुखका मूल विरह वह विषयी पाता।
नहीं प्रेमी के पास विरह दुख दानव आता॥
प्रेम वारुणी मस्त अहर्निशि प्रेमी रहता।
सुख सरिता में सदा मौज से रहता बहता॥
नहीं प्रेम पथ पथिक फूंककर पांव बढ़ाता।
नहीं बुरा व्यवहार किसी का उसे सताता॥
शशि में प्रेमी प्रेम पात्र का वदन निरखता।
चारु चांदनी छटा उसी को है यह कहता॥
सरिता तट वन बाग नगर जंगल में जाकर।
होता प्रेमी मुदित इष्ट धन अपना पाकर॥
तन मन्दिर में हृदय सुकोमल सेज बिछाकर।
प्रेम पात्र का वदन सजल आंखों से धोकर॥
प्रेम कली की गूंथ सुगुण से माला सुन्दर।
करता प्रेमी नित्य उसी की पूजा दुख हर॥
प्रेमी का जो दुख देख निंदा करते हैं।
कहते हैं कर प्रेम अभागे क्यों मरते हैं॥
वे न जानते प्रेम परीक्षा यह होती है।
सच्चे प्रेमी हेतु दवा सुन्दर होती है॥
जल भुन करके खाक कीट प्रेमी होजाता।
धन्य धन्य हो भली प्रतिष्ठा जगमें पाता॥
विषयी है असमर्थ सदा वह सुख पाने में।
इकटक रहता है चकोर चन्दा लखनेमें॥
पर जो शशि को देख देख वह भूला रहकर।

पाता है सुख वह लौकिक से सुन्दर तर ।
सुन्दर सुनकर शब्द सदा सारंग सुप्रेमी ॥
फंदे में भी फंस जाता है अविचल नेमी ।
पर तौभी वह सदा शब्द-मय होकर रहता ॥
बंधी हुई तज देह सौख्य सरिता में बहता ।
पी पी रटता भले, पपीहा स्वाति न पाता ॥
पर निश्चय है कभी नहीं वह कुछ दुख पाता ।
पी पी रट कर कंठ सुखा वह जो सुख पाता ॥
नहीं कामना-दास स्वर्ग में वह सुख पाता ।

पारसनाथ त्रिपाठी ।

प्रेम

प्रेम हिय का भाव परम पुनीत है ।
प्रेम का माधुर्य्य वचनातीत है ॥
प्रेम ही तो स्वर्ग है सत्कर्म है ।
प्रेम ही तो आत्मा का धर्म है ॥
प्रेम ही सब सद् गुणों का सार है ।
प्रेम ही सुख शान्ति का आधार है ॥
प्रेम सागर का न मिलता पार है ।
प्रेम के हाथों बिका संसार है ॥
मानवों में पक्षियों में फूल में ।
जलचरों में तारकों में धूल में ॥
प्रेमकी ध्वनि गूंजती है सब कहीं ।
प्रेम बन्धन है कहीं मिलता नहीं ॥
मोर हैं जब घन घटा को देखते ।

मुग्ध होकर प्रेम में हैं नाचते ॥
देख करके पंकजों को फूलते ।
प्रेम के वश हो भ्रमर हैं गूंजते ॥
चन्द्र को जब है चकोर निहारता ।
बांधकर धुन है उसी को देखता ॥
वेणु का सुनता हिरण जब नाद है ।
प्रेम के वश भूलता सब याद है ॥
मंदाकिनी है प्रेम की बहती जहां ।
जानिये है स्वर्ग भी निश्चय वहां ॥
प्रेम शासन मोद कारी है महा ।
चुटकियों में दुःख हरता है अहा ॥
स्वार्थ को प्रेमी नहीं पहचानते ।
दुःख को भी सौख्य हैं वे मानते ॥
दीप की लौ है शलभ को सर्वदा ।
प्राण देना सुख समझता है सदा ॥
भेद को प्रेमी नहीं है जानते ।
जाति अथवा पांति वे कब मानते ॥
उच्चता या नीचता कब है वहां ॥
कृष्ण मिलते हैं सुदामा से जहां ।
रत्न है यह जीव निश्चय मानिये ।
प्रेम को बस दीप्ति उसकी जानिये ॥
प्रेम का जो मर्म है पहचानता ।
भेद जीवन का वही है जानता ॥

—मोतीलाल जैन

यह तो घर है प्रेमका, ख़ाला का घर नाहिं ।
शीश काटि पग तल धरे तब बैठे घर माहिं ॥
प्रेम प्रेम सब कोई कहे प्रेम न जाने कोय ।
आठ पहर भीना रहे प्रेम कहावे सोय ॥

कबीर

प्रेम अंग एक चाहिये भेस अनेक बनाय ।
चाहे घर में वास कर चाहे बन में जाय ॥
प्रेम पथ ही प्राणियों की पुण्यगति का द्वार है ।
प्रेम ही से जगत का होता सदा उपकार है ॥
जिस हृदय में प्रेम का उठता नहीं उद्गार है ।
व्यक्ति वह निःसार है वह राष्ट्र भू का भार है ॥
नर जन्म उसका व्यर्थ है जो प्रेमका भूखा नहीं ।
जो प्रेम का करता निरादर सुख नहीं पाता कहीं ॥

परिश्रम ।

(१)

हों क्षुद्र जो नर उन्हें करदे महान्,
दे रङ्क को कर धनी नृप शक्तिमान् ।
देवे तथा अपढ़ को कर ज्ञानवान,
ऐसी महौषधि परिश्रम है सुजान ।

(२)

दे मेरु को कर, अहो! जल पूर्ण ताल,

प्रासाद सिन्धु तल में रचदे विशाल।

दे कोश से पद "असम्भव" को निकाल,

उद्योग, प्यार इसका कर हो निहाल॥

(३)

प्रारम्भ तू यदि करे कुछ भ्रात! काज,

हो पूर्ण जो प्रथम बार न, है न लाज।

उद्योग तू कर, न हिम्मत व्यर्थ हार,

हों कार्य सिद्ध फिर, देख, किसी प्रकार॥

(४)

आलस्य से सफलता रवि होय अस्त,

उत्साह, वीर्य, बल, आयु घटै समस्त।

आलस्य भ्रात! नर का रिपु है महान,

आलस्य को तज सदा विष के समान॥

(५)

जी से परिश्रम करे नर जो सदैव,

तो हो प्रसन्न उससे सब भांति दैव!

दे क्यों न वस्तु सुख की उसको प्रदान;

तू जान ले हृदय में इसको सुजान॥

(पाण्डेय लोचनप्रसाद शर्मा)

उद्योग ।

(१)

यह कविता उद्योग विषय पर प्रिय पढ़ लेना ।
गहरी दृष्टि पसार ध्यान तुम इस पर देना ॥
वह मनुष्य उद्योग हीन किस मतलब का है ।
जो न करे कुछ काम ठीक यह मत सबका है ॥

(२)

बड़े काम की वस्तु कभी उद्योग न छोड़ो ।
जो करने के काम उन्हें कर सम्पति जोड़ो ॥
कभी कीजिये नहीं नेक आलस्य देह धर ।
रहो सदा सन्नद्ध देश उन्नति में प्रियवर ॥

(३)

समय आज का फेर तुम्हें मिलने का नहिं है ।
चूकि गये तो चिह्न नाम मिटने का नहिं है ॥
इससे कुछ उद्योग समय पर करना चाहिये ।
निज सुधार के लिये खूब दम भरना चहिये ॥

(४)

कहते हैं सद्ग्रन्थ लक्ष्मी वही जन पाते ।
जो करते उद्योग समय नहिं व्यर्थ गवांते ॥
कर पै कर जो धरे हुए वह कौन काम के ।
ऐसे कर्म-विहीन आदमी नीच नाम के ॥

(कर्णकवि)

पुरुषार्थ ।

पुरुष क्या पुरुषार्थ हुआ न जो, हृदयकी सब दुर्बलता तजो ।
प्रबल जो तुम में पुरुषार्थ हो, सुलभ कौन तुम्हें न पदार्थ हो ?
प्रगतिके पथमें विचरो उठो, पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥१॥

न पुरुषार्थ बिना कुछ स्वार्थ है, न पुरुषार्थ बिना परमार्थ है ।
समझ लो यह बात यथार्थ है, कि पुरुषार्थ वही पुरुषार्थ है ।
भुवनमें सुख शांति भरो उठो, पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥२॥

न पुरुषार्थ बिना वह स्वर्ग है, न पुरुषार्थ बिना अपवर्ग है ।
न पुरुषार्थ बिना क्रियता कहीं, न पुरुषार्थ बिना प्रियता कहीं ।
सफलता वर-तुल्य वरो उठो, पुरुष हो पुरुषार्थ करो, उठो ॥३॥

न जिसमें कुछ पौरुष हो यहां, सफलता वह पा सकता कहां ?
अपुरुषार्थ भयंकर पाप है, न उस में यश है न प्रताप है ।
न कृमि-कीट-समान मरो, उठो, पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥४॥

मनुज जीवन में जय के लिये, प्रथम ही दृढ़ पौरुष चाहिए ।
विजय तो पुरुषार्थ बिना कहां, कठिन है चिरजीवन भी यहां ।
भय नहीं, भवसिन्धु तरो, उठो, पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥५॥

यदि अनिष्ट अड़ें अड़ते रहें, विपुल विघ्न पड़ें पड़ते रहें ।
हृदय में पुरुषार्थ रहे भरा, जलधि क्या, नभ क्या, फिर क्या धरा ?
दृढ़ रहो, ध्रुव धैर्य धरो, उठो, पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥६॥

यदि अभीष्ट तुम्हें निज सत्व है, प्रिय तुम्हें यदि मान महत्व है ।
यदि तुम्हें रखना निज नाम है, जगत में करना कुछ काम है ।
मनुज ! तो श्रममे न डरो, उठो, पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥७॥

प्रकट नित्य करो पुरुषार्थ को, हृदय से तज दो सब स्वार्थ को ।
यदि कहीं तुमसे परमार्थ हो, यह विनश्वर देह कृतार्थ हो ।
सदय हो, पर दुःख हरो, उठो, पुरुष हो, पुरुषार्थ करो उठो ॥८॥
(मैथिलीशरण गुप्त)

श्रम ।

अबतो उठो क्यों पड़ रहे हो व्यर्थ सोच विचार में ।
सुख पूर्ण जीना भी कठिन है श्रम बिना संसार में ॥
भग्न मनोरथ होकर भी तू श्रम करना मत छोड़ ।
सारी विषय वासनाओं से अपना मुखले मोड़ ॥

उद्योग ।

उद्यम कीजै जगत में, मिले भाग्य अनुसार ।
मोती मिले कि शंख कर, सागर गोता मार ॥ १ ॥
उद्यम ते संपति घर आवे, उद्यम करे सपूत कहावे ।
उद्यम करे संग सब लागे, उद्यम ते जगमें जस जागे ।
समुद्र उतरि उद्यम ते जइये उद्यम ते परमेश्वर पइये ।
बिनु उद्यम नहीं पाइये, कर्म लिखे हू जौन ।
बिनु जल पान न जाइ है, प्यास गंग तट भौन ॥२॥
उद्यम में निद्रा नहिं, नहिं सुख दारिद नांहिं ।
लोभी उर संतोष नहिं, धीर अबुध में नांहिं ॥
(गिरधर दास)

कन कन जोरे मन जुरै, खाते निवरे सोय।
बूंद बूंद से घट भरे, टपकत रीतो होय॥ २॥
ताको अरि कह करि सके, जाके यतन उपाय।
जरे न ताती रेत में, जाके पनही पाय॥ ३॥
श्री को उद्यम ते बिना, कोऊ पावत नांहि।
लियो रतन अति यतन सों, सुर असुरन दधि मांहि॥४॥

(वृंद कवि)

हलन चलन की शक्ति है, तबलौं उद्यम ठानि।
अजगर लो मृगपति बदन, मृगन परत हैं आनि॥ ५॥
जो उद्यम करतो रहै, तो निश्चय फल पाय।
जैसे बिन गैया रखै, बिल्ली माखन खाय॥ ६॥

"सर्वत्र एक अपूर्व युग का होरहा संचार है।
देखो दिनों दिन बढ़ रहा विज्ञान का विस्तार है॥"

(मैथलीशरण)

"संसार की समरस्थली में धीरता धारण करो।
चलते हुए निज इष्ट पथमें संकटों से मतडरो॥"
"संकट देख सामने आने कभी न कहना हाय।
धीरज धरके उसे झेलना साहस उरमें लाय॥"
"असमर्थ हैं किस भांति हम निज धर्म का पालन करें।
निज हीन दुर्विध बान्धवों का दुख हम कैसे हरें॥"
ऐसे बचन मुख से कभी भी हम निकालेंगे नहीं।

कर हैं हमारे क्यों भला कर्त्तव्य पालेंगे नहीं ॥
संसार में ऐसी न कोई वस्तु दुर्लभ है सही ।
उद्योग करके भी जिसे हम प्राप्त कर सकें नहीं ॥
(गोपालशरणसिंह)

कर्तव्य ।

१

कई पत्र पतझड़ होने से, नीचे आ आ गिरते थे ।
ठौर छूट जाने से वे सब मारे मारे फिरते थे ॥
मैंने पूछा "क्यों रे पत्तो ! तुम्हें मृत्यु का शोच नहीं।"
वे बोले "कर्तव्य पाल मरने पर होता शोच कहीं ॥"

२

दलित सुमन से दुख दरशाकर पूछा करके प्यार ।
"क्या तू अपनी मृत्यु देखकर' करता सोच विचार ॥
"नहीं नहीं" वह बोल उठा "मैं दूंगा सुखसे प्राण ।
क्योंकि पूर्ण कर्तव्य पालकर मैं कर रहा प्रयाण ॥

३

एक घड़ा रस्से में अपना, गला बँधा पानी लाया ।
कूए के उपलों से ठुकरा. बेचारे ने दुख पाया ॥
मैंने पूछा "मूर्ख घड़े क्या इसमें तूने लाभ लिया ।
वह बोला" कि मैंने अपना एक मात्र कर्तव्य किया ॥

४

फलित आमने थके जनों को छाया दे विश्राम दिया ।

किंतु उन्होंने आम झड़ाकर आम वृक्षको कष्ट दिया ॥
मैं तरु से बोला हे तरुवर अब न इन्हें देना विश्राम।
वह बोला हट मूर्ख यहां से, मेरा तो यह ही है काम ॥

५

नन्हीं चीटी से मैं बोला, "क्यों यों करती है उद्योग।
पांव तले दब मर जावेगी, कर न पायगी इसका भोग॥"
तिरस्कार करती वह बोली, "कौन देख आया भवितव्य।
जग में आकर किया भला क्या। जो न किया पूरा कर्तव्य॥"

(भगवन्तगणपति गोइलीय)

जीवनगीत।

शोक भरे छन्दों में मुझसे कहो न "जीवन सपना है"।
जो सोता है वह है मृतवत्, जगका रंग न अपना है ॥ १ ॥
जीवन सत्य, नहीं झूठा है—चिता नहीं जिसका अवसान।
"तू मिट्टी, मिट्टी होवेगा" उक्ति नहीं यह जीव—निदान॥ २ ॥
भोग विलास नहीं, न दुख हैं, मानव जीवन का परिणाम।
करना ही चाहिये नित प्रति अधिकाधिक उन्नतिकाकाम ॥३॥
गुण है अमित समय चंचल है यद्यपि हृदय बहुत बलवान।
तद्यपि ढोल समान बिलखता चिता ओर कर रहा पयान ॥४॥
जगकी विस्तृत रणस्थली में जीवन के झगड़ों के बीच।
नायक बनकर करो काम सब पशुओं ऐसे बनो न नीच ॥५॥
नहीं भविष्यत् पर पतिया मृतक भूतको जानो भूल।

काम करो सब वर्तमान में सिर प्रभु मन दृढ़ यह करतूत ॥६॥
सज्जन चरित सिखाते हमभी कर सकते हैं निज उज्वल।
जगसे जाते समय रेत पर छोड़ चरण चिन्ह निर्मल ॥ ७ ॥
चरण चिन्ह ये देख कदाचित् उत्साहित हों वे भाई।
भवसागर की चट्टानों पर नौका जिनकी टकराई ॥ ८ ॥
हो सचेत श्रम करो सदा तुम, चाहे जो कुछ हो परिणाम।
सदा उद्यमी होकर सीखो धीरज धरना करना काम ॥ ९ ॥

(पुरोहित लक्ष्मीनारायण)

एकान्त वासका सुख।

(१)

जगमें केवल वही पुरुष है सुखी कहाता।
धन या यशका लोभ न जिसका जी बहकाता ॥
चिन्ता जिससे जोड़ न सकती है निज नाता।
जिसे न तज सन्तोष कहीं क्षण भरभी जाता ॥
जो निज पैतृक स्वल्प भूमिको कमा प्रेमसे।
बसता है निज जन्म भूमि में सदा क्षेमसे ॥

(२)

खेतों से शुचि अन्न दुग्ध गो से बलकारी।
लभ्य उसे फल शाक सदा वन से रुजहारी ॥
मिलती है मृदु ऊन उसे भेड़ों के द्वारा।
उसका वस्त्राभाव मिटाती है जो सारा ॥

उसके तरुवर जाह, शीत ऋतु में हरते हैं ।
शीतल छाया दान उसे तप में करते हैं ॥

(३)

धन्य पुरुष वह जिसे नहीं है चिन्ता नाना ।
सुख से जो निश्चिन्त सदा रहता मन माना ॥
क्षण क्रम घण्टे दिवस तथा वर्षों के फेरे ।
ढल जाते हैं शान्ति-पूर्ण उसके बहुतेरे ॥
कर सकता है रोग न दूषित उसके तनको ।
नहिं अशान्ति की अग्नि जलाती उसके मनको ॥

(४)

निशि में वह निश्चिन्त नींद सुखकी सोता है ।
ग्रन्थों का कर पठन हृदय का मल धोता है ॥
कर बहु क्रीडा खेल थका मन बहलाता है ।
यों श्रमकी रुचि नित्य नई वह प्रगटाता है ॥
पाप कर्म को त्याग धर्म नितआचरता है ।
सदा प्रेमसे ध्यान ईशका वह धरता है ॥

(५)

इस प्रकार निश्चिन्त, जन्म मेरा कटजावे ।
मुझे न कोई लखे न कोई मम गुण गावे ॥
जगका झंझट कभी एकभी पास न आवे ।
मम मन-मन्दिर-मध्य शान्ति नित आश्रय पावे ॥

मरने पर मम हेतु न कोई अश्रु बहावे।
नहीं समाधिकी शिला कहीं मम चिन्ह बतावे॥

(लोचनप्रसाद)

दुःख।

यद्यपि दुःख तुम यहां न होते तो क्या होता सुख का भान।
बिना तुम्हारे कभी न होता जगमें सुख का कुछ भी गान॥
तुम्हीं एक निस्वार्थ होगये स्वयम् उठाकर अपना मान।
अपना यश गौरव ले करके आते हो औरों के काम॥
जगत कसौटी तुम्हीं एक हो ना समझे संपति खोई।
बिना तुम्हारे हुआ न जगमें बड़भागी सज्जन कोई॥
यदि आते तुम स्वल्प काल को छटा खूब दिखलाते हो।
समय अल्पको कल्प बनाकर शिक्षा हमें बताते हो॥
तुम यदि होते नहीं जगत में तो फिर क्यों करता कोई काम।
बिना तुम्हारे हुए मित्रवर! क्या होता जगमें कहीं नाम॥
जब जब जिसपर तुम आते हो उसको करते परम पुनीत।
नीति सिखाकर सबसे उत्तम बनते हो तुम उसके मीत॥
आवो आवो और प्रभा अब भारत जन पर फैलावो।
छटा अनोखी बता बताकर सबको चेताते जाओ॥
बिना तुम्हारे स्वागत के क्या उन्नति का पथ पावेंगे।
नहीं नहीं बस नहीं है उत्तर माखी सम मर जावेंगे॥
जिसने तेरा किया अनादर वेही नर हैं सड़जाते।

देश वही हैं पीछे रहते तुझे देख जो घबराते ॥
सुख से प्रथम मान कर तेरा जो तुझको अपनाता है ।
वही जगत में मान सर्वदा सबसे उत्तम पाता है ॥
सौख्य कुछ नहीं फल है तेरा व्यर्थ हुआ है उसका नाम ।
जब वह नहीं कार्य करता है तब फिर क्या है उसका काम ॥
दुखको आता देख न मित्रो ! मनमें अपने घबराना ।
सुख से उत्तम मान के उसको नित प्रति अपनाते जाना ॥

(मनोरमा से)

कुसंग ।

अतिखल की संगति करने से जग में मान नहीं रहता ।
लोहे के संग में पड़ने से घन की मार अनल सहता ॥
सबसे नीति शास्त्र कहता है दुष्ट संग दुखका दाता ।
जिस पय में पानी रहता है वही खूब औटाया जाता ॥
उनके प्राण नहीं बचते हैं जिनको दुर्जन अपनाते ।
जो गेहूं के संग रहते हैं वे ही घुन पीसे जाते ॥
जहां एक भी दुष्ट रहेगा वह समाज क्यों चल पावेगा ।
जहां तनिक भी अमल पड़ेगा मनों दूध फट जावेगा ॥

कुसंग (२)

सदा दुष्ट से दूर रह, करना कभी न मेल ।
दुष्टों के संग बैठते, उठती बुरी उलेल ॥ १ ॥

घसै जो काजल कोठरी, लगती काली रेख।
वैसे दुर्जन संग से, अपजस लगता देख॥ २॥
(साहित्य नवनीत)

खल अरु सर्प इन दुहुन, में भलो सर्प खल नाहिं।
सर्प डसत हैं काल में, खल जन पद पद माहिं॥ १॥
विनसत बार न लागही, ओछे जन की प्रीति।
अम्बर डम्बर सांझ के, वारू कीसी भीत॥ २॥
(वृन्दकवि)

नीच निचाई नहिं तजै, सज्जन हू के संग।
तुलसी चन्दन विटप वसि, विष नहीं तजत भुजंग॥१॥
तुलसी खल वाणी मधुर, सुनि समझिय हिय हेरि।
राम राज बाधक भई; मूढ़ मन्थरा चेरि॥ २॥
उल्लू दिन में अंध अरु, अन्धरात में काक।
पै खल जन के नेत्र पै, रात दिवस ही खाक॥ ३॥
(कविवर तुलसीदास)

सत्संग।

सत्संगति मुद मंगल मूल, दुर्जन संग करो मत भूल।
विना पुण्य मिलते नहिं संत, उनसे होते लाभ अनन्त॥
(सरस्वती पत्रिका)

आप आप कहि सब भलो, अपने काहे कोय।
तुलसी सब कहि जो भलो, सुजन सराहिय सोय॥

(तुलसीदास)

होय शुद्ध मिटि कलुषता, सत्संगति को पाय।
जैसे पारस को परसि, लोह कनक होजाय॥

(वृन्दकवि)

चाहे जो अपना भला, बैठ भलों के संग।
बात बात में सीखले, अच्छे अच्छे ढंग॥

(साहित्य नवनीत)

जाहि बड़ाई चाहिये, तजे न उत्तम साथ।
ज्यों पलास संग पान के, पहुंचे राजा हाथ॥

(वृन्दकवि)

कबीरा संगति साधुको, जौ की भूसी खाय।
खीर खांड़ भोजन मिले, साकट संग न जाय॥
कबीरा संगति साधुकी, ज्यों गंधी का वास।
जो कछु गंधी दे नहीं, तो भी बास सुबास॥
कबीरा खाई कोट की, पानी पीवे न कोय।
जाय मिले जब गंगसे, सब गंगोदक होय॥

(कबीरदास)

संतजन।

निज गुण श्रवण सुनत सकुचाहीं। पर गुण सुनत अधिक हर्षाहीं॥
सम शीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाव सबहि सन प्रीती॥

जप तप व्रत दम संयम नेमा । गुरु गोविंद विप्र पद प्रेमा ॥
श्रद्धा क्षमा मैत्री दाया । मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥
दम्भ मान मद करहि न काऊ । भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ॥
सुनु मुनि साधुन के गुण जेते । कहि न सकहि सारद श्रुति तेते ॥
उमा संत की यही बड़ाई । मन्द करत जो करहिं भलाई ॥
संत असंतन की अस करणी । जिमि कुठार चन्दन आचरणी॥
काटै परशु मलय सुनि भाई । निज गुण देय सुगन्ध बसाई ॥

तेते सुर शीशन चढ़त, जगवल्लभ श्रीखण्ड ।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परशु बदन यह दण्ड ॥

सम अभूत रिपु विमद विरागी । लोभामर्ष हर्ष भय त्यागी ॥
कोमल चित्त दीनन पर दाया । मन वच क्रम मम भक्त अमाया ॥

(२)

ये सब लक्षण बसहिं जासु उर । जानहु तात संत सन्तत फुर ।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं । परुष वचन कबहूं नहिं बोलहिं ॥
निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज ।
ते सज्जन मम प्राण प्रिय, गुण मंदिर सुख पुंज ॥
उपकृति कर कहते नहीं, गुप्त देत रहि दान ।
विचलित होय न विपति में, वे नर तीर्थ समान ॥

(रामायण)

(३)

सन्त कष्ट सह आपुहि, सुखी करै जु समीप।
आप जरै बरु और को, करै उजेरो दीप॥

(श्रीलाल)

बिना कहे हूँ सत पुरुष, पर की पूरैं आस।
कौन कहत है सूर्य को, घर घर करत प्रकाश॥
सज्जन को दुख हू दिये, पूरे दुर्जन आस।
जैसे चन्दन को घिसे, सुन्दर देत सुवास॥
जो तू चाहे अधिक रस, सीख ईख से लेय।
जो तोसों अनरस करै, ताहि अधिक रस देय॥

(पाठमाला)

(४)

मनसा जग को भला चहै, हिय छल रहै न नेक।
सो सज्जन संसार में, जाको विमल विवेक॥

(गिरधर दास)

जहां जहां बच्चा फिरै, तहां तहां फिरहि गाय।
कहे मलूक जहिं संतजन, तहां रमैया जाय॥

(मलूकदास)

रज्जब जाकी चालसों, दिल न दुखाया जाय।
यहां ख़लक़ खि़दमति करै, उत है ख़ुशी ख़ुदाय॥

(रज्जब)

धन नगरी धन देश है, धन पुर पट्टन गांव ।
जहां साधु जन उपजियों, ताकी बलि बलि जांव ॥
(अचलदास)

जब चेतै जबही भला मोह नींद सो जाग ।
साधू की संगति मिलै, सहजो ऊंचे भाग ॥
(सहजोबाई)

अहित किये हू हित करै, सज्जन परम सुधीर ।
सोखेहु शीतल करै जैसे नीर समीर ॥
(वृन्द कवि)

वहीहै मिटा देते कितने कसाले, वहीहै बड़ोंकी बड़ाई सम्हाले ।
वही है भले और बड़े नाम वाले, वहीहै अंधेरे घरोंके उजाले ॥
सभीजिनकीकरतूतहोतीहैढबकी, जोसुनतेहैंबातेंठिकानेकी सबकी ॥
बिगड़ती हुई बात वहहैं बनाते, धधकती हुई आग वेहैं बुझाते ।
बहकतों को वे हैं ठिकाने लगाते, जो ऐंठेहैं उनको भी वेहैं मनाते ॥
कुछऐसीदवाहाथउनकेहैआई, किधुलजातीहैजिससेजीकीभीकाई ।
(अयोध्या सिंह उपाध्याय)

सज्जन चित न कबहुं धरत, दुर्जन जनके बोल ।
पाहन मारे आमको, तऊ फल देत अमोल ॥
(वृंद कवि)

सत्यता

सांचे श्राप न लागही, सांचे काल न खांय ।
सांचे को सांचा मिले, सांचे मांहि समाय ॥
(कबीर दास)

सत्य बात और सत्याचार, करो सदा सबका उपकार।
जिससे पाओ सुख अभिराम जगमें रहे तुम्हारा नाम॥

(सरस्वती पत्रिका)

सत्य के आधार पर यह सृष्टि क्रम है चलरहा।
बल नहीं पड़ता ज़रा भी जो नियम है पल रहा॥
सत्य से संसार में जो नर विमुख होकर रहा।
धर्म खोकर पाप वो कर कर्म को रोकर रहा॥
चित्त में जो भाव हो पशु भी छिपाते हैं नहीं।
पक्षियों में भी कभी हम झूठ पाते हैं नहीं॥
शोक है फिर भी अगर हम झूठको छोड़ें नहीं।
पतित होवें और इससे मुख कभी मोड़ें नहीं॥
तो हमारी मनुजता का गर्व भी बेकार है।
फिर हमें धिक्कार है धिक्कार है धिक्कार है॥
सत्य जो है पालता केवल वही जीता रहा।
झूठ से नर जानवर से भी गया बीता रहा॥
सत्य से उन्नति निरन्तर हो न क्यों व्यापार में।
सत्य ही है मूल शिक्षा और शुद्धाचार में॥
सत्य धारी लोग लाखों होगये इस देश में।
सत्य को छोड़ा नहीं पड़कर विपद या क्लेश में॥
आज तक उनका जगत में है सुयश फैला हुआ।
कष्ट पाकर भी कभी जिनका न मन मैला हुआ॥

(अज्ञात कवि)

एक तुला शत यज्ञ फल, एक तुला में सांच।
इरा बड़ा है यज्ञ नहिं देख लउ श्रुति बांच॥
जहां सत्य तहां धर्म है, जहां धर्म तहां जीत।
तासों मन बच कर्मते, सतपै चलिये मीत॥

सांच की जय जग में होती है।

तुला तुही सबके करमें तुझ ही पर है जगका भार।
सत्यर्थ को तूही जानती तेरा है जग पर उपकार॥
कभी न झूठा तुझको जाना झूठ न आया तेरे पास।
सांच सांच की जांच की सदा सत्यका किया प्रकाश॥
तेरी जाचों पर सब कोई बोल न सके रहते मौन।
न्यायाधीश आदि भी आते, तोल तुलाने तेरे भौन॥
कहो सत्य की चाह नहि सत्य जहां है ईश वही।
गहो सत्य का खड्ग हाथमें रहे नहीं अन्याय कहीं॥

(हित कारिणी)

सत्य मूल सब सुकृत सुहाये। वेद पुराण विदित मुनि गाये।

सत्य तजे नहीं विपत में, वही अमर पद पाय।
हरिश्चन्द्र नृपका चरित, स्पष्ट भेद बताय॥
दृढ़ता रक्खै सत्य पर लक्ष्मी तजै न ताय।
श्री सत्य वृत भूपका चरित भेद बतलाय॥

जैसे औषधि रोगको तनतें देत भगाय।
तैसे धर्म्म अधर्म को मन ते देत हटाय॥

कृपा कौमुदी।

(१)

छोटे छोटे कृत्य दया के महा मनोहर जानो।
छोटे शब्द दयाके जगमें सुधाबिन्दु पहिचानो॥
ऐसे कृत्य, शब्द ऐसे ही, जे नर करैं सुनावैं।
ते नर धन्य, जगत को सुन्दर नन्दन विपिन बनावैं॥

(२)

छोटे शब्द दयामय कैसा हृदय कमल विकसावैं।
दया पूर्ण मुसकान पै कोटि मयंक लजावैं॥
छोटे छोटे कृत्य दयाके करत न कौड़ी लागै।
जहां न ऐसे कृत्य तहां ते जीवन रस सब भागै॥

(३)

छोटे करुणा–कृत्य जगत में रत्न अमूल्य विचारो।
देखत छोटे, ज्योति मोदमय, नेह सहित उर धारौ॥
जीवन छटा प्रचार चहत जो तो यह मत निरधारो।
हिय–प्राची ते कृपा कौमुदी चारों ओर पसारौ॥

(४)

इनहीं ते सब कृत्य होत हैं यह सिद्धांत निवारौ।

चिन धनहूं व्है सकत जगत में कृपा कृत्य निरधारो ॥
तनतें करो हर्ष युत सेवा मनते भलो विचारो ।
दया युक्त अतिशय मनहारी मीठे वचन उचारो ॥

हितकी सीख ।

(१)

करो सदा जगमें शुभ काम, जिससे मिले तुम्हें धन धाम ।
दुष्कर्मों को दीजे त्याग, मनकी पकड़ कीजिये बाग ॥

(२)

विद्या बिना न आदर होय, जगमें बात न पूछे कोय ।
जो विद्या पढ़ते भरपूर, वे रहते प्रमोद में चूर ॥

(३)

करें तपस्या, धर्म, जो योग, ऐसे दुर्लभ जग में लोग ।
जिनके मनमें नहीं विवेक, ऐसे जग में पुरुष अनेक ॥

(४)

दया धर्म का है शुभ मूल, इसे छोड़ना कभी न भूल ।
हिंसा करते जो दिन रैन, वे दुख के बनतेहैं ऐन ॥

(५)

जिन के मन में है संतोष, जग में वही पुरुष निर्दोष ।
सुख से रहते दुनियां बीच, उन्हें न कोई कहता नीच ॥

(श्रीमती पार्वती देवी)

अहंकार ।

करतेहो अभिमान तो कहीं मान न होगा ।
होगा सन्तत पतन कभी उत्थान होगा ॥
चिन्ताही में चित्त तुम्हारा चूर रहेगा ।
सुखतो होगा दूर दुख भरपूर रहेगा ॥
रहते हैं सब रुष्ट निरन्तर अभिमानी से ।
होताहै वह पतित आपही नादानी से ॥
अहंकारसे मिला कभी आनंद नहीं है ।
ईश्वर को भी गर्भ कदापि पसंद नहींहै ॥
जोहो तुम धनवान कभी अभिमान न करना ।
जोहो तुम बलवान कभी अभिमान न करना
है जिस नरमें गर्व कभी विद्वान नहीं है ।
समझो उसको मूढ़ ज़राभी ज्ञान नहींहै ॥
किया कंसने गर्व दुष्ट वह ध्वंस हुआहै ।
रावण परभी इसीलिये विघ रुष्ट हुआहै ॥
रणमें सब खपगये कौरव अभिमानी ।
अहंकार से नाश हुआ है विदित कहानी ॥

शील ।

शील रत्न सबसे बड़े सब रत्नन की खान ।
तीन लोककी सम्पदा बसी शील में आन ॥ कबीरदास
क्षमा शील जब ऊपजे अलख दृष्टि तब होय ।
बिना शील पहुंचे नहीं कोटि कथै जो कोय ॥
लहि राज्य धराधिप आप हुये । महि मध्य प्रचंड प्रताप हुये ॥

गुण सीख महा गुणवान हुये। बल भूरि भरें बलवान हुये ॥
धन जोड़ बटोर कुबेर बने। लहि शौर्य पराक्रम शूर बने ॥
रखके उर धैर्य सुधीर बने। करके पर विक्रम वीर बने ॥
न हुये कुछ जो न सुशील हुये। बन मानुष बन्दर भील हुये ॥
नर होकरभी खर आप रहे। नित जीवन में परिताप रहे ॥
जग तीतक के बन भार गये। अपनी करणी न सुधार गये ॥
मनमें यदि शील सदा रखते। निज जीवन का फल तो चखते॥

(कुसुमाञ्जली)

आज और कल

दयासिन्धु की दया प्राप्त कर, हुए अगर तुम धन शाली।
बनो विनत पाओगे शोभा, जैसे डाली फल वाली ॥
मदालसी होकर हे भाई !, कभी न अपयश सिर लैना।
कलकी बात त्याग शुभ कृति में, दान आजही दे देना ॥

(२)

यदि विचार के प्रौढ़ पने से, न्यायाधिपका पद पाओ।
तो तुम हंस न्याय की उपमा, सच्ची करके दिखलाओ ॥
जब तक हो अभियोग सशंकित तब तक पातक से डरना।
आज रोक कर उस निर्णय को, कल निश्चय करके करना ॥

(३)

किसी कला में कुशल बने तुम अथवा विद्या के भण्डार।
तो कल्पद्रुम की समता कर, करना लोगों का उपकार ॥
होना तब तक शान्त कभी ना, हो ना जब तक सुखी समाज।
कल का मनमें ध्यान न लाना, सीख उसे सिखलाना आज ॥

(४)

बड़ा समझकर अगर किसी ने, कुछ भी तुमसे लिया उधार।
किसी हेतुसे दिया न अब तक, तो तुम रहना बने उदार॥
जो कल देने कहता है तो, हित-घृत में क्यों आवे आंच।
आज उसे ना कभी सताना, कलही करना उसकी जांच॥

(५)

अपना जो अनुकूल मित्र हो, करे दोष तो जाना भूल।
लेकिन उस पर लक्ष्य चाहिये, जो रहता हरदम प्रतिकूल॥
छल बल कौशल से यदि वश हो, तो फिर रखना उसे सम्हाल।
बदला कल पर नहीं छोड़ना, लेना देखो आज निकाल॥

(६)

बुद्धि देव ने दी है हमको, धन्यवाद दूं उसको लक्ष।
हित अनिहित अपना पहिचानें, भावी भूत और प्रत्यक्ष॥
यदि कोई कुछ कहे कि जिससे होगा कलहादिक उत्पात।
सुन कर बात आज तो उसकी, नित्य कहो कल उससे तात॥

(७)

हाथ पांव में जब तक बल है, आंखों में है तेज प्रकाश।
श्रवण शक्तिहै बुद्धि उपस्थित, मन जब तक ना हुआ निराश॥
दान-धर्म-उपकार आदि का तब तक करलो संग्रह साज॥
क्या जानें कल रहो न कल तो, क्यों जाने देते हो आज॥

(८)

सब कामों का समय नियत है, कहते हैं ऐसा धीमान।
बोते हैं भुमें फिर जैसे, समय देखकर चतुर किसान॥
आज उचित करना है जिसका करो आज उसको धर धीर।

कल का जोहो काम आज क्या, कल ही करना उसको गीर ॥
(अमीर अली)

सुखमय जीवन

(१)

है विद्या औ जन्म धन्य धरती पै तिनको ।
पराधीनता मांहि कटत नहीं जीवन जिनको ॥
कर्म पवित्र विचारन के जिनके अति सुन्दर ।
सरल सत्य सों मिला निपुनता के जो आकर ॥

(२)

बुरी वासना मनमें जिनके कबहुं न आवत ।
रूप भयंकर धारि मृत्यु नहि जिनहि डरावत ॥
जगज्जाल में बंधे करत नहीं यत्न हज़ारन ।
गुप्त प्रकट निज नाम सदा विस्तारन कारन ॥

(३)

जिनहिं ईर्षा होति नाहिं पर उन्नति देखे ।
चाटुकारि अनजान वस्तु है जिनके लेखे ॥
राजनीति के तत्त्व करत नहिं चित आकरसन ।
धर्म नीतिके ऊपर जो वारत तन–मन–धन ॥

(४)

भयो कलंकित नाहिं कबहुं जिनको यह जीवन ।
विमल विवेचन–बुद्धिं विपत में विनति निकेतन ॥
खुशामदी नहिं खांय उड़ावैं जिनकी सम्पति ।
और शत्रुन कहं प्रबल करत नहिं जिनकी अवनति ॥

(५)

परमेश्वर को भजन करत जो सांझ सवेरे ।

हरि सेवाको छांड़ि चहैं नहिं सुख बहुतेरे ॥
धर्म-ग्रन्थ अवलोकन में ही समय बितावत ।
साधुन के सत्संग बैठि हरि-कथा चलावत ॥

(६)

नहिं उन्नति की इच्छा आनहिं अवनति को डर ।
आशा बन्धन काटि भये निरद्वन्दी सो नर ॥
वसुधा शासन भूलि करत निज मनका शासन ।
यद्यपि सो अति सुखी कहावत तऊ "अकिञ्चन" ॥

(जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी)

पुस्तकावलोकन प्रेमी-विद्वान्

मृत पुरुषों के संग सर्वदा, दिन मेरे सब जाते हैं ।
जहां देखता वहीं पुराने, पण्डित मुझे दिखाते हैं ॥
मेरे परममित्र वे उनसे, दूर नहीं मैं जाता हूं ।
प्रति दिनमें उनसे ही बातें, करने में सुख पाता हूं ॥१॥
सुखमें उनकी हीं संगति से, सुख मेरा अधिकाता है ।
दुखमें उनके आश्वासन से, खेद दूर होजाताहै ॥
इन सबके कृत उपकारों का, चेत मुझे जब आता है ।
अश्रुविन्दुओं से कपोल दल, गीला हो हो जाता है ॥२॥
सुधि उनकी कर साथ उन्हीं के पूर्व काल में रहता हूं ।
कर उनके गुण-गान, अवगुणों को मैं दूषित करताहूं ॥
उनके भय, उनकी आशायें, बांट सभीमैं लेता हूं ।
बन विनम्र उनके चरितों से, मनको शिक्षा देता हूं ॥३॥

मृत विद्वानों ही से मुझको आशा—उनपर ही विश्वास।
उनकी ही संगति में मेरा होगा अन्त चिरंतन वास ॥
उनकी ही सहचर भविष्य मैं, बन, मैं समय बिताऊंगा।
आशा है अविनाशी यशमें, छोड़ विश्व मैं जाऊंगा ॥४॥

(बाबू मुरलीधर बी. ए,)

यही है जीवन का उद्देश्य।
विद्या ध्ययन कर गुरु पिता में राखैं भक्ति विशेष ॥
द्रव्य प्राप्ति कर दीनजनों का मेटैं दुःख कलेश।
पर हित कृत साधन में तत्परही बस रहे हमेश ॥
चाहैं रहैं देश अपने में चाहें रहैं विदेश।
पर निज भाषा भाव न त्यागैं; त्यागैं नहीं स्वदेश ॥

गौरीशंकर शर्मा।

पश्चाताप।

रात गंवाई सोय करि दिवस गंवायो खाय।
हीरा जन्म अमूल था कौड़ी बदले जाय ॥
आछे दिन पाछे गये गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करे चिड़ियां चुग गई खेत ॥
बीती ताहि बिसारिदे आगे की सुधि लेय।
जो बनि आवे सहज में ताही में चित देय ॥
ताही में चित देय बात जोई बनि आवे।

दुर्जन हंसे न कोय चित्त में खेद न पावे ॥
कहै गिरधर कविराय यहै कर मन परतीती।
आगे को सुख होइ समझ बीती सो बीती ॥

(गिरधरराय)

गई बात का सोच तजि कोविद करत उपाय।
अर्जुन नें सुत मरण सुनि मार्‍यो रिपुको जाय ॥

दृढ़ता

दृढ़ संकल्प मनुज मन कर लेवे जैसा।
निश्चय जानों फिर वह बनसक्ता है वैसा ॥
मग्न मनोरथ कुसमय हैं दोष बताते।
दृढ़ प्रतिज्ञमनमें हैं ऐसी बात न लाते ॥
वे हैं काल क्षेत्र पर निज अधिकार जमाते।
दैव योग के वे न कभी धोखे में आते ॥
स्थिति रूपी राजाको मुकुट हीन वे करते।
दास बनाते और नचाते हैं मन भरके ॥

(मोतीलाल जैन)

क्षमा

क्षमा सकल गुनसे बड़ो, क्षमा पुन्य को मूल।
क्षमा जासु हिरदै रहे, तासु देव अनुकूल ॥१॥
अपराधी निज दोष ते, दुख पावत वसुयाम।
क्षमा शील निज गुननते, सुखी रहत सब दाम ॥२॥
क्षमा खड्ग लीने रहे, खल को कहा बसाय।
अगिन-परी तृण रहित थल, आपहिते बुझि जाय ॥३॥

स्वावलम्बन

मानते जी की हैं सुनते हैं सदा सब की कही ।
जो मदद करते हैं अपनी इस जगत में आप ही ॥
भूल कर वे दूसरे का मुँह कभी तकते नहीं ।
कौन ऐसा काम है वे कर जिसे सके नहीं ॥
जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं नहीं ।
काम करने की जगह बातें बनाते हैं नहीं ॥
आज कल करते हुये जो दिन गँवाते हैं नहीं ।
यत्न करने में कभी जो जी चुराते है नहीं ॥

(हरिऔध)

लोभ

लोभ न कबहुं कीजिये, यामें विपति अपार ।
लोभी को विश्वास नहिं, करत कोऊ संसार ॥१॥

(गिरधरदास)

जेती सम्पति कृपण की, तेती तू मति जोर ।
बढ़त जाय ज्यों ज्यों उरज, त्यों त्यों हियो कठोर ॥२॥

(बिहारीलाल)

घर घर डोलत दीन है, जन जन याचत जाय ।
दिये लोभ चश्मा चखनि, लघु पुनि बड़ो लखाय ॥३॥
लोभ महा रिपु देह में, सबै दुखन की खान ।
पाप मूल अरु प्राण हर, तजे ताहि मतिमान ॥४॥

क्रोध मोह अहंकार ते, लोभ महा बलवान ।
जाके वश ह्वै देत है, दुर्लभ नर प्रिय प्रान ॥५॥

(हिन्दी की तीसरी पुस्तक)

गुण विहीन वा वृद्ध को, कन्या देवे जौन ।
केवल धन के लोभसे, अधम पुरुष है तौन ॥

हमारा कर्तव्य

हे शिक्षितो कुछ कर दिखाओ ज्ञानका फल है यही ।
हो दूसरों को लाभ जिससे श्रेष्ठ विद्या है वही ॥
संख्या तुम्हारी अल्प है उसको बढ़ाओ शीघ्रही ।
नीचे पड़े हैं जो उन्हें ऊपर चढ़ाओ शीघ्रही ॥
अपने अशिक्षित भाइयों का प्रेम पूर्वक हित करो ।
उनकी समति से उन्हें उत्साह युत परिचित करो ॥
ज्ञानानुभव से तुम न निज साहित्य को वंचित करो ।
पाओ जहां जो बात अच्छी शीघ्रही संचित करो ॥

(मैथिलीशरण गुप्त)

तृष्णा

(षटपदी)

भटक्यो देश विदेश तहां फल कहूं न पायो ।
निज कुलको अभिमान छांड़ि सेवा चित लायो ॥
सह्यो गारि अरु खर्चि हाथ भारत घर आयो ।
दूरि करत हूं दौरि श्वान ज्यों घर घर खायो ॥

इहि भांति नचायो मोहि तैं बहकायो दे लोभबल ।
अजहुं न तोहि सन्तोष कहु तृष्णा तूं पापिन सबल ॥१॥
खोदत डाल्यो भूमि गड़ी कहुं पावे सम्पति ।
धौंकत रह्यो पखान कनक के लोभ-लगी मति ॥
गयो सिन्धु के पार तहां मुक्ता नहिं पाये ।
कौड़ी कर नहिं लगी नृपनको शीश नवाये ॥
साधे प्रयोग शमशान में भूत प्रेत बैताल भाजि ।
कितहूं न भयो वांछित कछू अबतो तृष्णा मोहि ताजि ॥
उदय अस्त रवि होत आयुको छीन करत नित ।
ग्रह धंधे के मांहि समय बीतत अजान चित ॥
आंखिन देखत जन्म जरा अरु विपत मरनहूं ।
तदपि चित नहिं होत त्रास लखि निश्चरहूं ॥
उठति लकरिया टेक तिमिर आंखिन में छायो ।
शब्द सुनत नहिं कान वचन बोलत बहकायो ॥
यह दशा भई तनकी तऊ चकित होत मरिबो सुनत ।
देखी विचित्र गति जगतकी दुखहूं को सुखसौं गुनत ॥
नदी रूप यह आस मनोरथ-पूरि रह्यो जल ।
तृष्णा तरल तरंग राग है ग्राह महाबल ॥
नाना तर्क विहंग संग धीरज तरु तोरत ।
भ्रमर भयानक मोह सबन को गहि गहि बोरत ॥
नित बहत रहत चित भूमि में चिंता तट अति विकट ।
कढ़िगये पार योगी पुरुष उन पायो सुख तट निकट ॥

दोहा

गंगा तट गिरिवर गुहा, उहां कहां नहीं ठौर ।
क्यों रोते अपमान सों, खात पराये कौर ॥
इन्द्र भये धनपति भये, भये शत्रु के शाल ।
कल्प जिये तोहू गये अन्त काल के गाल ॥
(वैराग्य मंजरी से)

सदाचार

जीवन का सर्वस्व, धर्म का ध्येय, सुधामय ।
मानव भूषण धवल मुकुट सभ्यता प्रभामय ॥
सज्जनता का मित्र शान्ति का परम सहायक ।
उन्नति तरु सोपान बुद्धि वपु आप विधायक ॥
कहूं कहां तक और मैं सदाचार सुखमूल है ।
इस उत्तम गुण के बिना मनुज वृक्ष नदकूल है ॥ १ ॥
इससे होकर अलग किसी ने नाम न पाया ।
हां जग में अपमान क्लेश नित नए उठाया ॥
सदाचार का प्रेम, अटल जिसने दर्शाया ।
उसी मनुज ने मधुर मृदुल जीवन फल खाया ॥
पंडित ज्ञानी धनद बर जग में पूरा मान है ।
सदाचार से रिक्त यदि तो वह श्वान समान है ॥
अतः पाठको ! रत्न सदा यह रक्षित रखना ।
जग का सत्यानंद धर्मयुत सुखसे चखना ॥

सब से बढ़कर नियम तुम्हारा यह पावन है।
सदाचार मुख सद्म देवगण मन भावन है॥
मोहन जंग के जाल में मित्र कभी फँसना नहीं।
सदाचार छायि स्रोत तजि कीचड़ में धसना नहीं॥

बुलबुला

(अभिमानी)

क्या अभिमानी की जै होगी।

कहो बुलबुलों क्यों इतराते कैसे घुमनी खाते हो।
अल्प आयु है शेष तुम्हारी इस पर क्यों इतराते हो॥
तुमसे इस सागर में कितने आये थे क्या पता कहीं।
नहीं नहीं जगमें अभिमानी का होता है चिन्ह कहीं॥
मत इतरावो हवा कहीं से आने को है अभी कहीं।
शेष लेश अभिमान न होगा होगा तेरा पता नहीं॥
इससे मत तू जलसे इतरा उसपर तुझको रहना है।
संग उसी के रह दुख सहना उसही पर फिर रमना है॥

(नवजीवन)

धैर्य

तब लगु सहिये विरह दुख जब लगिआउ सोवार।
दुख गये पर सुख है जाने सब संसार॥
कारज धीरे होत है काहे होत अधीर।
समय पाय तरवर फले केतक सींचो नीर॥

संसार की समरस्थली में धीरता धारण करो।
चलते हुए निज इष्ट पथ में संकटों से मत डरो॥
संकट देख सामने अपने कभी न कहना हाय।
धीरज धर कर उसे झेलना साहस उर में लाय॥

निद्रा

सुख से हमें सुलाने वाली, सब दुख दर्द भुलाने वाली।
होता है जब आना तेरा, लेता मन खग सभी बसेरा॥
राजा रंक न मन में धरती, सब पर कृपा बराबर करती।
कंकड़ सुमन सेज बनजाते, तेरी गोद प्रमोद मनाते॥
दिन भर धन्धे में खपना था, शान्ति और सुख तो सपना था।
खूब अंधेरे में तू आई, मेरे मन को है तू भाई॥
थकन मिटाकर बल देती है, तड़के ही फिर चल देती है।
सुस्ती सकल दूर होजाती, चिन्ता चूर चूर होजाती॥
फिर ताज़ा हम होजाते हैं, पुनः नये हम होजाते हैं।
फिर क्योंकर उपकार न मानूं, सुख की देवी तुझे न जानूं॥

(कुसुमाञ्जलि से)

धन्य जीवन

धन्य जीवन है उसीका साफ़ जो मनसे रहा।
स्वतन्त्रता का भोग कर परतन्त्रता से बचरहा॥
धारण किया जिसने कवच शुचि शांतिका निज देहपर।
रंचभी अभिमान जिसको हो न प्रभुता पायकर॥

दूसरों का दुःख लखकर जो रहा पीड़ित सदा ।
अवलोक कर सुख और का जिसको न दुःख होता कदा ॥
उसका ही जीना सफल है और जगत का रहना भला ।
विन कीर्ति के नरदेहका स्थिर समझलो है बला ॥
उपकार करने में जिन्हों ने होम अपनी जान दी ।
दूसरों के हेतु सब संपत्ति अपनी दान दी ॥
जिनकी भुजा पर काज करने सदा उद्यतरही ।
वेही मनुष्य निःसार जग को सारयुत करते सही ॥
जिसकी सभी हों इन्द्रियां नित नेग से वश में रहीं ।
जिसको न दुनियां जाल के फेरने घेरा है नहीं ॥
माना नहीं दुर्वाक्य को निज कार्य के आनन्दमें ।
वही सुखी है सृष्टि में पड़ता न जो फनफन्दमें ॥
जो आत्मवल शुचि मोद से नित ईश से मांगा किया ।
हे ईश मुझको शक्ति दो भवफन्द ने धावा किया ॥
नित प्रभू के गानमें जो नर सदा उद्यत रहा ।
उसको कहो दुख सृष्टि क्यों स्वप्न में व्यापे कहां ।

शुभ वाञ्छा

धर्म में मति हो हमारी सर्वदा, कर्म का उत्साह मनमें होवना ।
शर्म रक्खें ज्ञाती कुलकी देश की, हमसे हो उपकार जीवोंका घना
एक काभी दिल नहीं हमसे दुखे ।
बनपड़े उसकी बुराई कुछ नहीं ॥
जो हमारा दिल दुखादेवे कभी, या हमारा नाश करने को चले ।
जीतलें उसका हृदय निज प्रेम से, मुग्ध होकर जायें मिल अपने गले ॥